दादा भगवान परिवार का

जुलाई २०१८

शुल्क प्रति नकल : ₹ 20/-

अक्रम एक्सप्रेस

संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष

संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष

संपादकीय

बालमित्रों,

हमारा देश संतों और ज्ञानियों की भूमि है। धर्म और अध्यात्म से भरपूर हमारे देश में हर एक काल में संत और ज्ञानी जन्म लेते हैं। कलियुग भी इससे वंचित नहीं रहा है।

संतों, ज्ञानियों और उनके द्वारा बहते धर्म और अध्यात्म से ही अपने देश की संस्कृति है। दूसरे देश भौतिक प्रगति में आगे हैं। जबकि हमारा देश आंतरिक प्रगति के लिए जाना जाता है। उसका श्रेय सभी संतों और ज्ञानियों को ही जाता है।

तो आइए, आज हम संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष को गहराई से पहचानें। सभी के बीच क्या भेद है, उसे समझें और उनके प्रति अपने हृदय में खूब अहोभाव व्यक्त करें।

-डिम्पल मेहता

Editor : Dimple Mehta

Printer & Published by

Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj - 382421,
Ta & Dist - Gandhinagar.

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj - 382421,
Ta & Dist - Gandhinagar.

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar - 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj - 382421,
Ta & Dist-Gandhinagar.

अक्रम एक्सप्रेस

वर्ष : ६ अंक: ४
अखंड क्रमांक: ६४
जुलाई २०१८

संपर्कसूत्र
बालविज्ञान विभाग
त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद - कलोल हाइवे,
मु.पो. - अडालज,
जिला . गांधीनगर - ३८२४२१, गुजरात
फोन : (०७९) ३९८३०१००
email:akramexpress@dadabhagwan.org
Website: kids.dadabhagwan.org

वार्षिक सदस्यता(हिन्दी)
भारत :२०० रुपए
यू.एस.ए. :१५ डॉलर
यू.के. :१२ पाउन्ड
पाँच वर्ष
भारत : ८०० रुपए
यू.एस.ए. : ६० डॉलर
यू.के. : ५० पाउन्ड
D.D/ M.O 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम पर भेजें।

प्रश्नकर्ता : संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष इन तीनों में क्या फर्क है?

दीपक भाई : जिनका चित्त निर्मल हो गया है उन्हें संतपुरुष कहते हैं। उन्हें संसार में लक्ष्मी की आकांक्षा खत्म हो गई है। विषय-विकार के तूफान खत्म हो गए हैं। उनमें सिर्फ सात्विक अहंकार होता है कि भगवान तुम्हारा भला करेगा, भगवान का नाम लेना। वे हर एक इंसान को सुख-शांति देते हैं और खुद, भगवान जो करवाता है वह मैं करता हूँ। बाकी मुझे कुछ नहीं आता। अतः अहंकार भी डाउन होता है। जो साफ हृदय के हैं वे सभी संतपुरुष कहे जाते हैं। उन्हें संसार की कोई कामना नहीं है। लेकिन अहंकार है। अभी उन्हें आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है। वे सभी संतपुरुष कहे जाते हैं।

जिन्हें ज्ञानीपुरुष के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, जो संयमी बन गए हैं, वे सभी सत्पुरुष कहलाते हैं।

और ज्ञानीपुरुष अर्थात् जो खुद आत्मा के अनुभवी हैं। जिनके राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ खत्म हो गए हैं। जिन्हें कुछ पढ़ना बाकी नहीं रहा है, माला फिराना बाकी नहीं है, विषय-कषाय के परमाणु खत्म हो गए हैं, मुक्त हो गए हैं, जो केवल आत्मरूप ही रहते हैं, वे हैं ज्ञानीपुरुष! ऐसे ज्ञानावतार तो कभी-कभी ही होते हैं, वर्ना वे नहीं होते। इसलिए उन्हें दुर्लभ, दुर्लभ, अति दुर्लभ कहा गया है।

अतः इस जगत् में यदि मनुष्यों को थोड़ी सी भी सुख-शांति रहती है तो ये तीन उसके बड़े निमित्त हैं, संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष। वर्ना संसार में जितने भौतिक सुख हैं वे सुख-शांति देने वाले नहीं हैं। संतों की बातें, ज्ञानीपुरुष की बातें, उनके अवलंबन से मनुष्य के जीवन में कुछ शांति रहती है।

प्रश्नकर्ता : फिर आगे कहते हैं कि संतपुरुष का योगबल, सत्पुरुष का योगबल और ज्ञानीपुरुष का योगबल सारे जगत् का कल्याण करो, कल्याण करो, कल्याण करो।

दीपक भाई : ठीक है। उनके वचनयोग, मनोयोग और देहयोग सब कल्याणकारी होते हैं। वे खुद संत हैं, ज्ञानी हैं, इसलिए उनके वाणी, विचार, वर्तन से लोगों को सुख होता है, शांति होती है और उनकी हाज़िरी से आनंद हो जाता है। दुःख मिट जाता है। इसलिए ऐसी प्रार्थना करते हैं कि लोगों को शांति हो।

ऐसा हम रोज़ बुलवाते हैं। उसका क्या कारण है? यह बोलने से बाहर की जो खराब असरें हैं वे कमज़ोर पड़ जाती हैं। अभी जगत् बहुत खराब स्थिति में है और कुछ सालों तक खराब स्थिति रहने वाली है। इतनी ज्यादा खराब रहने वाली है कि मत पूछो बात! इसलिए इस जगत् का कल्याण हो ऐसा रोज़ हम बोलते हैं!

यह तो नई

संतों के साथ शिष्यों का संबंध होता है। वे मेरे गुरु और मैं उनका शिष्य और ज्ञानी के साथ परम विनय का संबंध है। गुरु-शिष्य जैसा नहीं। ज्ञानी ही मेरा आत्मा है। इसलिए वहाँ अभेदभाव होता है या फिर परम विनय होता है।

संतपुरुष, सत्पुरुष और ज्ञानीपुरुष - ये तीन, इस जगत् के कल्याण करने के निमित्त हैं। अन्यथा भगवान भी इस जगत् का कल्याण नहीं कर सकते। क्योंकि कल्याण के लिए निमित्त देहधारी रूप में होने चाहिए।

ही बात है

संतपुरुष अशुभ में से शुभ में ले जाते हैं, अर्थात् खराब छुड़वाते हैं और अच्छा पकड़वाते हैं। जबकि ज्ञानीपुरुष शुभाशुभ से भी ऊपर शुद्ध में ले जाते हैं, अर्थात् आत्मा में ले जाते हैं।

ये तीन निमित्त हैं। इसलिए हमें यहाँ इस तरह बोलना चाहिए कि

'प्रत्यक्ष संतपुरुषों का योगबल इस जगत् का कल्याण करो, कल्याण करो, कल्याण करो। प्रत्यक्ष सत्पुरुषों का योगबल इस जगत् का कल्याण करो, कल्याण करो, कल्याण करो। प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुष का योगबल इस जगत् का कल्याण करो, कल्याण करो, कल्याण करो।'

यदि जितना ऐसा बोलोगे न! तो उसमें सिर्फ जगत् कल्याण की ही भावना है।

संत श्री रमण महर्षि

महर्षि रमण का जन्म १८७९ में तमिलनाडु के मदुरै शहर से तीस किलोमीटर दूर एक छोटे से गाँव में हुआ था। उनका बचपन का नाम वेंकटरमण था।

महर्षि रमण का व्यक्तित्व बचपन से ही तेजस्वी और निराला था। उन्हें विद्याभ्यास में रुचि नहीं थी। एक दिन उनके शिक्षक ने उन्हें व्याकरण के तीन प्रकरण लिखने के लिए दिए। लिखते-लिखते उन्होंने सोचा कि यह निरर्थक है। उसी समय पेन्सिल, पुस्तक को एक ओर रखकर, वे संतों के साहित्य का अध्ययन करने लगे। यह उनके आध्यात्मिक जीवन की प्रारंभिक अवस्था थी। वे जीवन के उदेश्य की खोज में थे।

सोलह साल की उम्र में उन्हें एक ग़ज़ब की आध्यात्मिक अनुभूति हुई। वे अपने मामा के घर खिड़की में बैठे हुए थे। अचानक वे मूर्छित होकर गिर पड़े। उन्हें ऐसा लगा कि उनकी मृत्यु हो गई है। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि लोग उनके शरीर को जलाने के लिए श्मशान में ले जा रहे हैं। उस अनुभव ने उन्हें हिलाकर रख दिया। उन्हें लगा कि शरीर तो एक दिन जलकर भस्म हो जाने वाला है तो शरीर के लालन-पालन के लिए समय बिताना व्यर्थ है। समय बिगाड़े बिना आत्मा की उन्नति के लिए कुछ करना चाहिए। इस अनुभव के बाद वे सोलह साल की छोटी सी उम्र में ही एकांत साधना में बैठ गए।

महर्षि रमण को बचपन से ही अरुणाचल प्रदेश का विशेष आकर्षण था। जब वे छोटे थे तब उनके घर अरुणाचल प्रदेश से कोई अतिथि आए थे। "अरुणाचल" शब्द सुनते ही वेंकटरमण

प्रभावित हो गए थे। उन्होंने मन ही मन सोचा, " एक दिन मैं अरुणाचल प्रदेश ज़रूर जाऊँगा।" उन्हें अरुणाचल प्रदेश का अरुणाचलेश्वर मंदिर बहुत आकर्षित करता था। महर्षि रमण वहाँ कभी गए नहीं थे, लेकिन वह मंदिर उन्हें हूबहू दिखता था। अरुणाचलेश्वर मंदिर की उत्कंठा एक दिन उन्हें मंदिर तक खींच कर ले गई।

रमण को लगता रहता था कि व्यर्थ कार्यों में उनका मूल्यवान समय जा रहा है। एक दिन उनका मन बहुत ही व्यग्र हो गया। बस, उसी समय उन्होंने दृढ़ मनोबल से अरुणाचलेश्वर जाने का तय कर लिया। माताश्री को एक चिट्ठी लिखकर वे घर छोड़कर चले गए। अरुणाचलेश्वर पहुँचकर उन्होंने विधिवत् संन्यास धारण कर लिया और रात-दिन साधना करने के बाद रमण महर्षि जनकल्याण के मार्ग पर चल पड़े।

अनेक भक्त महर्षि के सान्निध्य में परम शांति का अनुभव करते थे। देश-विदेश से साधक उनके दर्शन के लिए आते और सच्ची समझ प्राप्त करते। महर्षि का सत्संग उनकी माताश्री के लिए भी आशीर्वाद रूप बन गया और वे भी अध्यात्म की ओर मुड़ी। जब उनकी माताश्री को भयंकर बीमारी हो गई तब महर्षि ने उनकी दिल से दिन-रात सेवा की।

महर्षि प्रत्येक जीव की लागणी (दया, भावुकता) का ध्यान रखते। कभी जाने-अनजाने यदि किसी जीव को दुःख पहुँचता तो वे तुरंत ही अपनी भूल से पलट जाते थे।

एक बार वे अरुणाचल के पर्वतीय प्रदेश से जा रहे थे। उनके बायें पैर से मधुमक्खी का एक छत्ता टकरा गया। गुस्से से भरी हुई मधुमक्खियाँ महर्षि पर टूट पड़ीं।

महर्षि को अपनी भूल समझ में आ गई। ज़रा सा भी घबराए बिना वे वहीं खड़े रहे और शांति से डंक का दर्द सहन किया।

मधुमक्खियों ने बैर भाव पूरा करके डंक मारना बंद कर दिया, उसके बाद ही महर्षि आगे बढ़े। बार-बार महर्षि कहते कि, "यदि हम अन्य जीवों को नुकसान नहीं पहुँचाए, तो उनसे डरने का कारण ही कहाँ रहता है? वे हमारा नुकसान नहीं करेंगे।"

महर्षि के आश्रम में हिंसक प्राणी भी शांत बन जाते। बंदर, पक्षी, गाय, गिलहरी आदि उनके आश्रम में आराम से रहते।

महर्षि रमण, जीवन के अंतिम समय तक अरुणाचलेश्वर आश्रम में रहे। उन्होंने २४ अप्रैल १९५० के दिन सेवाश्रम में अंतिम श्वास लिया।

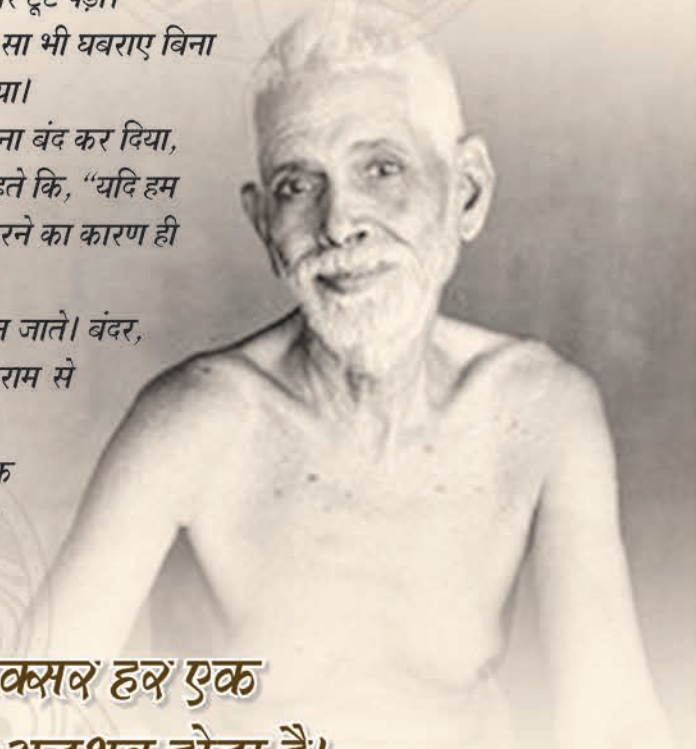

आज भी, आश्रम में अक्सर हर एक को महर्षि की हाज़िरी का अनुभव होता है।

सत्पुरुष श्री लघुराज स्वामी

ई. १८५० के आसपास का समय भारत के इतिहास का संक्रांतिकाल कह सकते हैं। उस समय दौरान भारत में मराठा और मुगल सल्तनत का अंत आ गया था और अंग्रेज लोगों की सत्ता व्यापक हो गई थी। राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों में तरह-तरह की घटनाएँ हो रही थीं। उस समय श्री लघुराज स्वामी का जन्म हुआ।

गरवी गुजरात के धोलका तालुका के वटामण गाँव में इस पुनित आत्मा का जन्म हुआ। बालक का नाम "लल्लुभाई" रखा गया। उनके पिता का नाम कृष्णदास और माता का नाम कुशल बाई था। वैष्णव संप्रदाय का यह परिवार गाँव में अग्रणीय था।

बच्चे में पूर्व के उत्तम संस्कारों का आभास बचपन से ही होने लगा था। वे सभी के साथ विनय और प्रेम से व्यवहार करते। मेहमानों के प्रति आभार भाव रखकर उनकी सेवा करते। वे ऐसी प्रवृत्तियाँ करते कि गाँव में विभिन्न जाति के लोगों में एकता रहे।

युवावस्था में आजीविका के लिए उन्होंने सराफे का व्यापार शुरू किया। प्रमाणिक और सरल स्वभाव की वृत्ति होने की वजह से कई लोग लल्लु भाई से पैसे ले जाते और व्याज के साथ वापस भी कर देते। जब उधारी समय से नहीं आती तब पैसे वसूल करने के लिए किसी भी तरह के कदम उठाने की वृत्ति उनके करुणामय हृदय में उत्पन्न ही नहीं होती थी।

जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था कि अचानक लल्लु भाई बीमार पड़ गए। उन्हें ऐसा रोग हो गया कि बारह महीने में उनका शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया था। अनेकों उपचार करने पर भी एक भी उपाय काम नहीं आ रहा था। उन्हें ऐसा लगने लगा कि शरीर ज्यादा नहीं टिकेगा, उनकी तबियत पूछने आने वाले हर एक को वे बताशा देते और अपने दोषों की क्षमा-याचना भी करते।

इस गंभीर बीमारी से लल्लुभाई को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा की कि यदि रोगमुक्त हो गए तो

संसार त्याग करके साधु बन जाएँगे। जैसे कि उस दृढ़ प्रतिज्ञा के बल से, एक साधारण दवाई के उपचार से ही वे रोगमुक्त हो गए। स्वास्थ्य प्राप्त होते ही प्रतिज्ञा अनुसार लल्लु भाई श्री हरखचंदजी के दर्शन के लिए गए और गुरुजी के पास पहुँचकर दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। मुनि श्री ने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करने के लिए कहा।

कुछ समय बाद लल्लु जी की माताश्री ने लल्लु जी को दीक्षा की आज्ञा दे दी। एक शुभ मुहूर्त में लल्लु जी ने खंभात में दीक्षा ली और साधु जीवन जीने लगे। लल्लु जी मुनि शास्त्र, अभ्यास, स्तवन भक्ति और ध्यान आदि प्रवृत्तियों में रहने लगे। उनकी सरलता और गुरु भक्ति से वे पूरे संघ में लोकप्रिय हो गए।

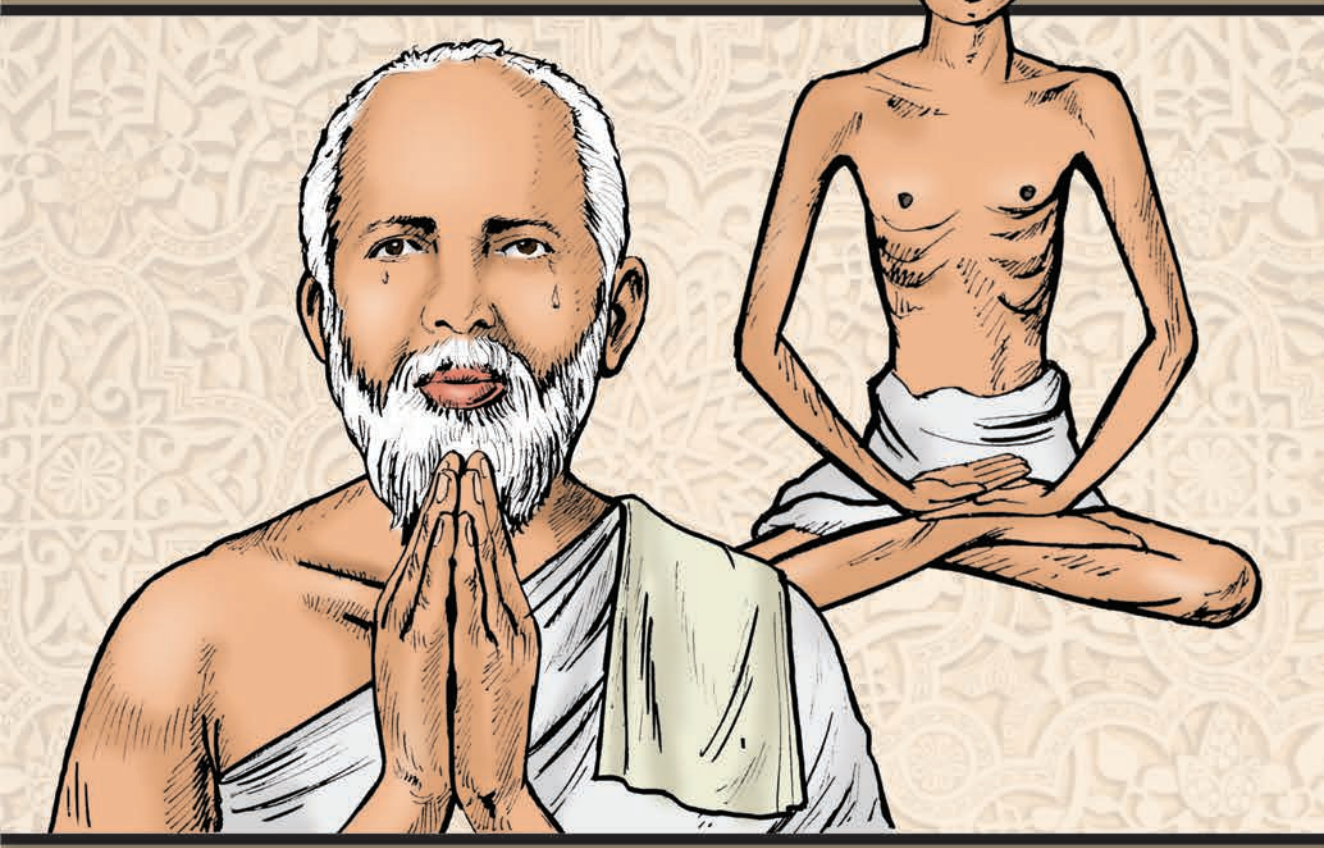

दीपावली के दिनों में श्रीमद् राजचंद्र खंभात पधारे। लल्लु जी मुनि को पहली बार श्रीमद् जी का सत् समागम प्राप्त हुआ। जैसे पूर्व की कोई पहचान हो, वैसे ही पहली बार दर्शन होते ही लल्लु जी मुनि श्रीमद् के सामने झुक गए। श्री लल्लु जी ने श्रीमद् को तीन बार साष्टांग नमस्कार किया और आत्मा की पहचान के लिए माँग की। श्रीमद् जी ने भी लल्लु मुनि के पूर्व संस्कार देखकर, जब तक वे खंभात में रहे तब तक हर रोज़ उन्हें बोध दिया।

श्री लल्लु जी का श्रीमद् के साथ परिचय और पत्रव्यवहार बढ़ने लगा। उनके हृदय में श्रीमद् के प्रति अपूर्व भक्ति और अनन्य प्रेम स्थापित हो गया। जब भी श्रीमद् के पत्र आते तब वे पत्र की प्रदक्षिणा करते। खुद को महाभाग्यशाली मानकर, हर्षोल्लास से पत्र खोलकर पढ़ते। लल्लु जी महाराज की दृष्टि में श्रीमद् परमात्मा ही थे। वे जीवनभर श्रीमद् की भक्ति में तन्मयाकार रहते।

जिस दिन श्रीमद् राजचंद्रजी का देहविलय हुआ, उस दिन श्री लल्लु जी मुनि का व्रत था।

रात जंगल में निकालकर, दूसरे दिन लल्लु जी मुनि गाँव में आए, तब उन्हें श्रीमद् के देहविलय का समाचार मिला। यह समाचार मुनि श्री के लिए असह्य थे। वे जंगल वापस चले गए और आहार पानी लिए बिना, वह दिन उन्होंने विरह की वेदना में जंगल में ही बिताया।

श्रीमद् के देहविलय के बाद भी लल्लु जी मुनि की श्रीमद् के प्रति भक्ति तो बढ़ती ही गई। ऐसी अद्भुत और अपूर्व गुरु भक्ति देखकर, श्री रत्नराज स्वामी ने लल्लु जी मुनि को "लघुराज जी" के नाम से संबोधित किया। लल्लु जी मुनि की सर्व में प्रभु देखने की दृष्टि से लोग उन्हें "प्रभु जी" के नाम से भी संबोधित करते थे।

गुजरात के कई स्थलों पर विहार करके, श्री लघुराज स्वामी ने अनेक जीवों को मोक्षमार्ग की ओर मोड़ा। वृद्धावस्था में, श्री लघुराज स्वामी विहार नहीं कर पाएँगे ऐसा सोचकर मुमुक्षुओं ने उनसे आणंद के पास अगास गाँव में स्थिरवास करने के लिए विनती की। लोक कल्याण के हेतु, अगास गाँव में, श्री लघुराज स्वामी की छत्रछाया में, श्रीमद् राजचंद्र आश्रम का मंगल प्रारंभ हुआ।

अगास में छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, गाँव के, शहर के, स्त्री-पुरुष, उम्र के भेदभाव के बिना सभी जात-बिरादरी से

श्री रत्नराज स्वामी ने लल्लु जी मुनि को "लघुराज जी" के नाम से संबोधित किया। लल्लु जी मुनि की सर्व में प्रभु देखने की दृष्टि से लोग उन्हें "प्रभु जी" के नाम से भी संबोधित करते थे।

लोग आने लगे। प्रभु श्री का सभी जीवों के प्रति निर्भेद प्रेम देखकर, लोग उन्हें भक्ति भाव से नमन करते और वहाँ रहकर आत्मकल्याण के साथ ही साथ आश्रम में विविध सेवाएँ देते।

परम कृपालुदेव का (श्रीमद् राजचंद्र) स्मरण करते-करते ८२ साल की उम्र में प्रभु श्री का देहविलय हुआ। प्रभु श्री की परम कृपालुदेव के प्रति भक्ति अवर्णनीय थी। उनके रोम-रोम में सिर्फ कृपालुदेव ही थे। जो जीव प्रभु श्री के पास आते, उन्हें अपनी ओर नहीं मोड़ते, ज्ञानीपुरुष श्रीमद् राजचंद्र की पहचान करवाकर ज्ञानी को ही सर्वस्व मानने के लिए कहते। ज्ञानीपुरुष की सच्ची पहचान करवाकर, खुद गौण हो जाते।

प्रभु श्री का जीवन हमें ज्ञानीपुरुष के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति की झाँखी करवाती है। मित्रो, इस अमूल्य मनुष्य जीवन में हमें भी आत्मज्ञानी परम पूज्य दादाश्री मिले हैं। तो हम भी उनके प्रेम में डूबकर अपना काम निकाल लें।

ज्ञानीपुरुष श्रीमद् राजचंद्र

श्रीमद् राजचंद्र (श्री रायचंद भाई) का जन्म सौराष्ट्र के ववाणिया गाँव में, ९ नवम्बर १८६७ में हुआ था। उनके पिता का नाम रावजी भाई मेहता और माता का नाम देव बाई था।

उन्होंने सात साल की उम्र में स्कूल में दाखिला लिया था। उनकी यादशक्ति इतनी तीव्र थी कि एक ही बार पाठ पढ़ने से उन्हें याद रह जाता। उस यादशक्ति के कारण उन्हें घर पर पाठ पढ़ने की ज़रूरत नहीं पड़ती। स्कूल में सिखाते समय शिक्षक पाठ पढ़ते उतने में ही उनका काम हो जाता था। आठ साल की उम्र से उन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया था। आठ साल की उम्र में उन्होंने ५००० कड़ियाँ लिख दीं थी।

बचपन से ही वे स्वभाव के बहुत सरल और प्रेमालु थे। श्रीमद् के ही शब्दों से उनकी उस समय की अवस्था का पता चलता है, "उस समय मुझ में प्रीति, सरलता, वात्सल्य बहुत था। सभी के साथ एकत्व की भावना रहती थी, सर्व में

मातृत्व भाव होगा तभी सुख है, ऐसा मुझ में स्वभाविक आ गया था। यदि लोगों में किसी भी प्रकार की जुदाई के अंकुर देखता तो मेरा अंतःकरण रो पड़ता।

ऐसे प्रखर बुद्धिशाली और प्यारा विद्यार्थी, शिक्षकों और सहाध्यायिओं को प्रिय हुए बिना तो नहीं रहेंगे न! विद्यार्थियों और शिक्षकों को राजचंद्र पर बहुत प्रेम था। कक्षा में शिक्षक की उपस्थिति में श्री राजचंद्र सभी विद्यार्थियों को पढ़ाते थे, वह शिक्षक देखा करते थे।

बचपन से ही उन्हें नया जानने की, नया सुनने की और नया सीखने की एवं फिर उस पर मनन करने की आदत थी। दस साल की उम्र में तो वे कई विषयों पर जोशीला भाषण देने लगे थे।

श्रीमद् राजचंद्र के पिता कृष्ण की भक्ति करते थे। बचपन में राजचंद्र ने उनसे कृष्ण भक्ति के पद और अलग-अलग अवतारों के चरित्र सुने थे। उस समय से ही उनमें ईश्वर के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा हो गई थी। तेरह साल की उम्र में उन्होंने पिता की दुकान पर बैठना शुरू कर दिया था। वहाँ भी उन्होंने अपना वाँचन-मनन जारी

ही रखा। जब समय मिलता तब वे पुस्तक पढ़ते या कविताएँ लिखते। कभी समय नहीं बिगाड़ते। किसी को कम या ज्यादा कीमत नहीं बताते थे और किसी को कम या ज्यादा तोलकर भी नहीं देते थे। इस तरह छोटी उम्र से ही उनमें व्यवहार में नीति धर्म पर ज़ोर देने की वृत्ति थी।

गृहस्थ आश्रम में श्रीमद् ने हज़ारों का व्यापार किया था। बचपन से ही उनमें जो नीति न्याय के संस्कार थे उनका विकास होता गया। व्यापार में माल खुद जाँचकर खरीदना, बिक्री की कीमत एक ही रखना, व्याजबी मुनाफा ही लेना, किसी का दिल नहीं दुभे ऐसा व्यवहार करना, चाहे जितना फायदा हो फिर भी दिए गए वचन से नहीं पलटना आदि व्यवहार के उच्चतम नियमों का वे सतत पालन करते थे।

महात्मा गाँधी को ऐसा लगता था, "धर्मकुशल इंसान व्यवहार कुशल नहीं हो सकता, वह श्री रायचंद भाई (श्रीमद्) ने गलत सिद्ध कर दिखाया था। अपने व्यापार में पूरी सावधानी और होशियारी रखते। इतनी सावधानी और होशियारी होते हुए भी वे व्यापार की चिंता नहीं करते। जैसे ही व्यापार की बात पूरी हो जाती कि तुरंत ही वे कोई धार्मिक पुस्तक या नोट खोलकर लेखन या वाँचन में लग जाते क्योंकि उनका रुचि का विषय व्यापार नहीं बल्कि आत्मार्थ था।

इस तरह श्रीमद् एक प्रामाणिक और कुशल व्यापारी की तरह भी हमारे सामने आते हैं।

जैसे-जैसे पुष्प की सुगंध फैलती है वैसे-वैसे चारों दिशाओं से भँवरे उस ओर स्वयं आकर्षित होकर आते हैं। उसी तरह कृपालुदेव (श्रीमद राजचंद्र) की ओर भी जिज्ञासु साधक, विद्धान, साधु और गुहस्थ सभी वर्ग के लोग खिंचने लगे।

उस उज्जवल ज्ञानप्रकाश का लाभ, काविठा के बच्चों को भी प्राप्त हुआ था। एक बार काविठा के स्कूल के बच्चे कृपालुदेव के साथ जंगल में जाकर बैठे।

कृपालुदेव ने पूछा, "बच्चों, आपके एक हाथ में छाछ का लोटा(पात्र) हो और दूसरे हाथ में घी का लोटा हो, और रास्ते में जाते हुए किसी का धक्का लगे तो कौन सा लोटा सँभालोगे"?

एक बच्चे ने जवाब दिया, "घी का लोटा।"

कृपालुदेव ने कारण पूछा, तो बच्चे ने कहा, "छाछ तो कोई भर देगा लेकिन घी का लोटा कोई नहीं भरेगा।" इस उदाहरण का सार समझाते हुए कृपालुदेव ने कहा, "घी जैसे मूल्यवान आत्मा को सँभालना और आपत्ति आए तब छाछ जैसे शरीर को जाने देना।"

फिर कृपालुदेव ने पूछा, "बच्चों आपने बकरी देखी है?"

बच्चों ने "हाँ" कहा।

"तो ठीक है। भैंसा देखा है?" कृपालुदेव ने पूछा।

"हाँ, भैंस जैसा होता है!" बच्चों ने जवाब दिया।

कृपालुदेव ने बताया, "बकरी तालाब में पानी पीने जाती है, तो किनारे पर खड़ी रहकर पानी पी लेती है। जबकि भैंसा पानी पीए बिना लौट जाता है।"

बच्चों ने पूछा, ऐसा "क्यों"?

कृपालुदेव ने इस उदाहरण का सार समझाते हुए कहा कि भैंसा तालाब में जाकर पानी हिलाकर रख देता है। जिससे वह पानी पी नहीं सकता। भैंसे की तरह कुछ जीव ज्ञानीपुरुष के पास जाकर अपनी बुद्धिमानी दिखाते हैं। इसलिए ज्ञानीपुरुष की बात का सार प्राप्त नहीं कर सकते। जो जीव सरल भाव से ज्ञानीपुरुष की बात को अंतर में समा लेते हैं, उन्हें बकरी की तरह पानी पी जाने वाला समझना। इस तरह सरल

दृष्टांतो से कृपालुदेव ने हमेशा बच्चों को गहरी समझ दी।

एक बार कृपालुदेव धरमपुर के पहाड़ी प्रदेश में कुछ दिन के लिए रहने गए थे। उस समय कोई पोलिटिकल एजेन्ट वहाँ शिकार के लिए आए थे। उनके लिए शिकार की व्यवस्था की गई थी। लेकिन जब तक उस विस्तार में कृपालुदेव की हाज़िरी थी तब तक एजेन्ट साहिब को कोई शिकार प्राप्त नहीं हुआ।

ज्ञानीपुरुष की हाज़िरी का प्रभाव कितना अद्‌भुत होता है! उनकी हाज़िरी में सभी जीवों का रक्षण होता है।

एक बार ववाणिया में कृपालुदेव मूलजी भाई भाटिया के साथ घूमने निकले। वे श्मशान से कुछ दूरी पर खड़े थे। श्मशान की ओर देखा, तो कोई जलती हुई चीज़ चलती हुई दिखाई दी। फिर दो, चार, छः, दस जगहों पर ऐसा प्रकाश चलता हुआ दिखा। वह देखकर मूलजी भाई को डर लगने लगा। मूलजी

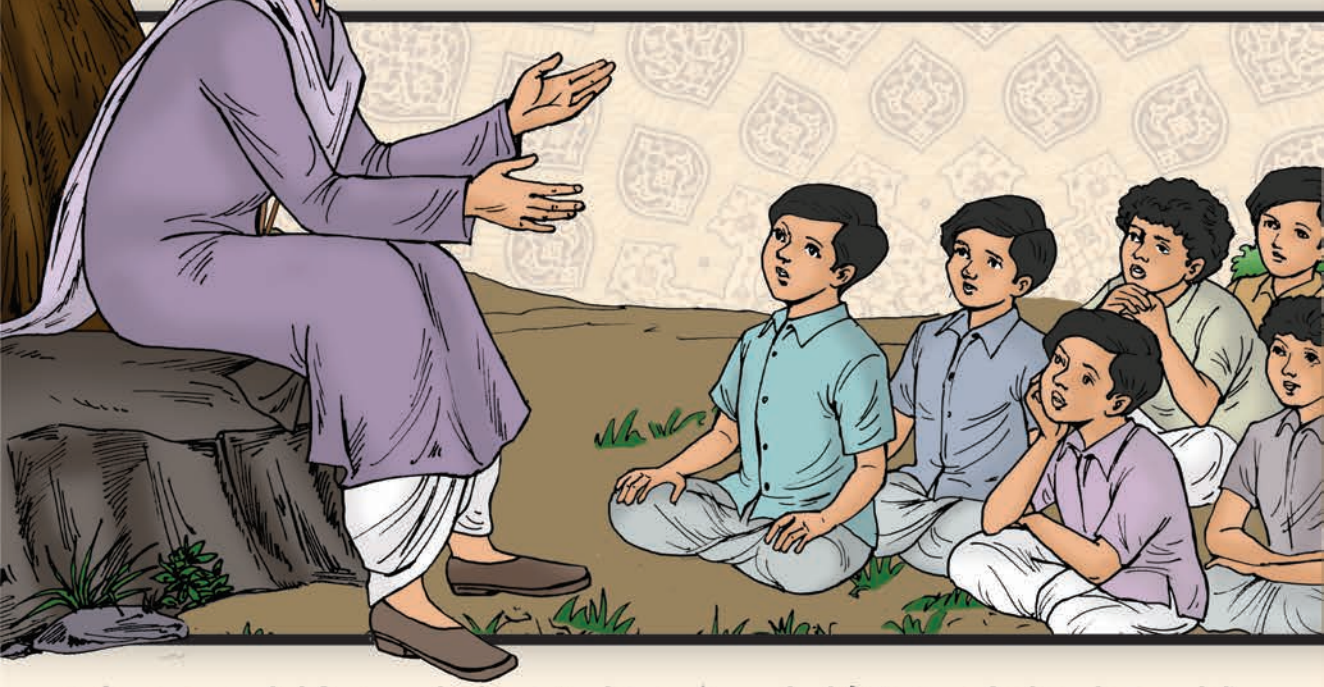

भाई का भय दूर करने के लिए कृपालुदेव ने कहा, "चलो, हम वहाँ जाकर देखते हैं।" श्मशान की ओर जाते हुए, रास्ते में एक आदमी मिला। पूछताछ करने पर पता चला कि एक मुसलमान की मृत्यु हो गई थी और रात होने की वजह से मशाल वाले कब्रिस्तान की ओर जा रहे थे।

सही बात का पता चलते ही, मूलजी भाई का भय खत्म हो गया। इस घटना से श्रीमद् जी ने समझ दी कि अज्ञान की वजह से भय लगता है। सच्चा ज्ञान होते ही सभी प्रकार के भय खत्म हो जाते हैं।

कृपालुदेव का आयुष्य तैंतीस साल का था। इस छोटे से आयुष्य काल के दौरान कई जीव कृपालुदेव के परिचय में आकर, उनसे प्रभावित हुए थे। लेकिन कुछ ही साधकों ने उनकी यथार्थ पहचान प्राप्त करके, ज्ञान प्राप्त किया था।

मित्रो, कृपालुदेव ने कहा है कि मोक्ष अति-अति सुलभ है लेकिन "ज्ञानीपुरुष" का मिलाप होना अति-अति दुर्लभ है। हम अत्यंत पुण्यशाली हैं कि हमें ज्ञानीपुरुष श्री दादा भगवान की पहचान हुई है और उनका यथार्थ मिलाप प्राप्त हुआ है। तो चलिए, दादाश्री की दी हुई समझ अंतर में उतारकर अपना काम निकाल लें।

चलो खेलें...

१. प्रश्नचिन्ह् की जगह पर कौन सा नंबर आएगा? वह ढूँढिए।

२. नेन्सी के प्रश्नचिन्ह् की जगह पर कौन सा कलर का टुकड़ा और कौन सा नंबर आएगा वह ढूँढने में मदद कीजिए।

1	2	3	4	5	6	7	8
	?						

मीठी यादें

यह उस समय की बात है जब नीरू माँ "दादा दर्शन" में रहते थे। उस दौरान नीरू माँ का "तीर्थकरों का यथार्थ तत्त्वदर्शन" सीरियल की शूटिंग चल रही थी। एक ब्रह्मचारी भाई हमेशा के लिए नीरू माँ के पास आ गए थे उसे करीब एकाध साल बीता होगा। जब वे भाई उनकी सेवा में जाते तब वे जहाँ नीरू माँ की शूटिंग चलती थी वहाँ झाँकते थे। यदि शूटिंग में रिसेस जैसा कुछ होता तो दो मिनट अंदर जाकर दर्शन करके चले जाते। वर्ना बाहर से ही दर्शन करके चले जाते।

इसी तरह एक बार सुबह दस बजे वे भाई जा रहे थे। नीरू माँ के रूम का दरवाज़ा थोड़ा खुला था। अंदर कोई नहीं था। वे भाई अंदर गए। नीरू माँ पलंग पर लेटे-लेटे आप्तवाणी पढ़ रहे थे।

जब नीरू माँ ने उन भाई को देखा तो उन्हें अंदर बुलाकर बिठाया और फिर पूछा, "कैसा चल रहा है? विधि, वाँचन, सामायिक, प्रतिक्रमण हो रहे हैं न?"

भाई ने कहा, "नहीं नीरू माँ, पोल मारते हैं। मुश्किल से आधे-पौने घंटे जैसा होता होगा।"

यह सुनकर नीरू माँ बोले, "देखो, अभी सुबह के साढ़े दस बजे हैं तुमने कभी भी हमें इस समय सोते हुए देखा है?

भाई ने कहा, नहीं नीरू माँ, मुझे भी प्रश्न तो हुआ कि आप क्यों सो रहे हैं?

नीरू माँ ने कहा, अभी हमें बुखार है। यदि एक-दो डिग्री का बुखार होता तो क्या हम किसी को पता चलने देते? तीन या चार डिग्री का बुखार हो तो ही किसी को पता चलता है या फिर शरीर के कुछ हावभाव चेन्ज हुए हो तो। इसलिए आज हमने रिकॉर्डिंग बंद रखी है। इसीलिए हमने लेटे-लेटे पढ़ना शुरू किया। क्या हमें कोई मना करने वाला है? यदि हमें दिन में बारह घंटे सोना हो तब भी क्या हमें कोई मना करने वाला है ? इसलिए हमें अपने रुटीन में से ही समय निकालना है। इन सब परिस्थितियों में रुकने जैसा नहीं है हमें तो अपना काम करते जाना है।"

नीरू माँ की बात उन भाई को बहुत टच हो गई कि ज्ञानी तो एक कदम आगे ही होते हैं। फिर भी वे एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देते। चाहे कितनी भी बिमारी हो या कुछ भी हो। और हमें तो ज़रा सा सिरदर्द होता है तो भी शांति से सो जाते हैं।

अहो! अहो! नीरू माँ... ! आपको मेरा कोटि कोटि नमन!

और अंत में...

प्रश्नकर्ता : संतपुरुष, सत्पुरुष और खास करके ज्ञानीपुरुष हमारे बीच हाज़िर हैं तो उनकी कीमत हमें समझ में क्यों नहीं आती? यदि आज कृष्ण भगवान या महावीर स्वामी हमारे बीच होते तो उनकी कितनी कीमत होती तो ऐसी ज्ञानी की सही पहचान या कीमत क्यों नहीं होती?

दीपक भाई : पहचान नहीं पाए हैं इसलिए। सिर्फ परिचय है। एक आदमी को देखा हो कि वह हमारे पड़ोस में रहने आया है। अच्छा है। पहचानता हूँ, उसे पहचानता हूँ। ऐसा पहचानना, पहचानना नहीं कहा जाता। परिचय अर्थात् उनके बारे में थोड़ा सा जानना। फिर छः बारह महीने के बाद और ज्यादा टच में आते हैं। कभी हम उनके यहाँ खाना खाने जाते हैं, कभी वे हमारे यहाँ खाना खाने आते हैं। तब ज्यादा पता चलता है कि उनका स्वभाव अच्छा है। सेवाभावी

है। यानी कि थोड़ी पहचान हुई। पहचान अर्थात् उसकी प्रकृति के लक्षण पता चलते हैं कि यदि उसे लाख रूपए देंगे तो चोरी नहीं करेगा, घोटाला नहीं करेगा। बहुत भले स्वभाव का है। अतः पहचान हुई। इस तरह जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे कीमत समझ में आती है।

प्रश्नकर्ता : पहचान बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए?

दीपक भाई : पहचान बढ़ाने के लिए परिचय बढ़ाना चाहिए। इस सत्संग में, यात्रा में, शिविर में परिचय बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे पहचान बढ़ती जाती है। और जितने अंश पहचान बढ़ती है, उतने अंश उस रूप बनते जाते हैं।

दादा कहते हैं कि यदि आप हमें **साधु की तरह** पहचानोगे तो आप साधु जैसे बन जाओगे। हमें **आचार्य के रूप** में पहचानोगे तो वैसे बन जाओगे। **ज्ञानी की तरह** पहचानोगे तो ज्ञानी और **भगवान की तरह** पहचानोगे तो भगवान जैसे बन जाओगे। **परमात्मा जैसे पहचानोगे** तो परमात्मा बन जाओगे। **केवलज्ञानी जैसे** पहचानोगे तो केवलज्ञानी।

पहचान वाले को शंका ही नहीं होती। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो उन्हें जैसा पहचाना है वही रहता है। आज दादा चाहे कैसे भी किसी को तमाचा मार दें, तो नीरू माँ को ऐसा नहीं होता कि देखो दादा बिगड़ गए। शंका ही नहीं होती न! पहचान हो गई कि ज्ञानी अर्थात् यही। खुद ज्ञान में ही रहते हैं, आत्मा में ही होते हैं, एक क्षण के लिए भी देह में नहीं होते। यह शरीर चाहे जैसा कार्य कर रहा है, खुद मालिक ही नहीं होते। ऐसे पहचान होना अर्थात् उस रूप ही बना देते हैं। यह पहचान करने में ही कमी है।

प्रश्नकर्ता : क्या संसार की वैल्यू ज्यादा कर दी है इसलिए ज्ञानी की वैल्यू समझ में नहीं आती?

दीपक भाई : संसार का परिचय बढ़ गया है। उसमें विषय की वैल्यू रखी है, मान की वैल्यू रखी है, पैसों की वैल्यू रखी है, आवडत(कुशलता) की वैल्यू रखी है, कर्तापन की वैल्यू रखी है, इसलिए इस ओर का बंद होता जाता है। इसीलिए तो यह परिचय चाहिए। एक दिन सत्संग में आते हैं और बारह दिन नहीं आते तो परिचय कैसे बढ़ेगा?

दादा कहते हैं कि नीरू माँ को हमारी पहचान हो गई थी। एक सेकन्ड के लिए भी दादा को नहीं छोड़ना है। उनका बड़ा अस्पताल था फिर भी कहते कि नहीं, मैं तो ज्ञानी की सेवा करूँगी। ऐसी पहचान हो गई थी।

वे मेरा ही आत्मा हैं, मेरे मोक्ष का काम यहीं से होगा। उनके अधीन रहना है, उन्हें सर्वस्व अर्पण कर देना है, ऐसा उन्हें हो गया था, इसे पहचान हो गई कहा जाएगा। पहचान बढ़ते-बढ़ते संपूर्ण पहचान लिया न तो उस रूप बन जाएँगे। नीरू माँ को इतनी पहचान हो गई थी कि वे खुद वैसे बन सके। आत्मरूप बन गए।

ओरिग्स ने की नई खोज!

ओरिंग्टन बहुत बोर शहर लग रहा है!
मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।
जब आप सब फ्री होंगे तब क्या मेरे साथ चलोगे?
हाँ, यदि कुछ नया करने वाले हों तो ही! ...
मुझे यकीन है कि आपने ऐसा पहले कभी भी नहीं किया होगा।
ऐसा भी क्या है?
यह एक देखने जैसी दुनिया है, एक ऐसी जगह जहाँ हम निःस्वार्थ रूप से सेवा देकर मदद कर सकते हैं।
अरे ! वाह... क्या मैं भी वहाँ जा सकता हूँ?
हाँ, हम सब जा सकते हैं लेकिन मैंने ऐसा सुना है कि उसमें भाग लेने के लिए हमें बहुत एक्टिव, उत्साहित और जोश से भरपूर होना चाहिए।
अरे वाह ! हम कब जाने वाले हैं... क्या हमें वेबपेज पर ज्यादा जानकारी मिल सकती है?

http://jjd.dadabhagwan.org/

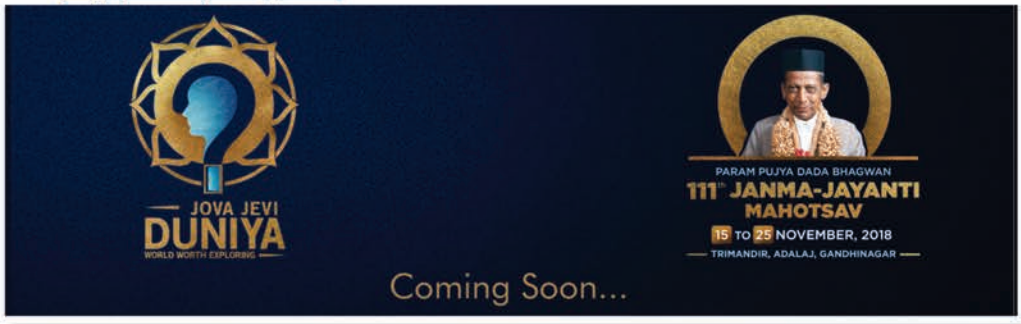

नए ओरिंग्स से मिलने के लिए यह QR कोड को स्कैन कीजिए।

Visit:
kids.dadabhagwan.org

Akram Express

July 2018
Year : 6, Issue : 4
Conti. Issue No.: 64

BAL VIGNAN
Fun 'n' Gnan with Dada

Date of Publication On 8th Of Every Month
RNI No.GUJHIN/2013/53111
Postal Reg. No. G- GNR-306/17-19
valid up To 31-12-2019
LPWP Licence No. PMG/HQ/081/2018
valid up to 31-12-2019
Posted at Adalaj Post Office
on 08th of every month

JJ - १११ के लिए U.K. के बच्चों द्वारा भक्ति हुई।

अक्रम एक्सप्रेस के सदस्यों के लिए सूचना

१. आपकी वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पता कैसे चलेगा? यदि आपकी इस महीने में आई हुई अक्रम एक्सप्रेस के कवर के लेबल पर लगे हुए मेम्बरशीप नं. के बाद **#** हो तो यह आपकी अंतिम अक्रम एक्सप्रेस है। उदा. **AGIA4313#** और यदि लेबल पर मेम्बरशीप नं. के बाद **##** हो तो अगले महीने में आपकी सदस्यता समाप्त होगी। उदा. **AGIA4313##** अक्रम एक्सप्रेस रिन्यूअल की जानकारी संपादकीय पेज पर दी गई है।

२. यदि किसी महीने का अक्रम एक्सप्रेस आपको नहीं मिला हो तो नीचे दी गई माहिती फोन नं. ८९५५००७५०० पर **SMS** करें।

१. कच्ची पावती नंबर या **ID No.**, २.पूरा ऐड्रेस पिन कोड के साथ, ३. जिस महीने का मैगेज़ीन नहीं मिला हो, उस महीने का नाम।

Publisher, Printer & Editor - Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation
Printed at Amba offset :- B-99 GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025